THE ECONOMIC TIMES

Date: 22-02-17

With the launch of bharat QR codes, the Government should also pay attention to cyber security

The launch of Bharat Quick Response (QR) code to enable people to pay for things they buy without swiping plastic cards is welcome. It makes digital payments seamless, convenient for customers, and helps the government's push towards moving to a less-cash economy. Merchants will be able to generate their own code that will be interoperable with banks, doing away with swipe card terminals.

This will lead to some cost savings, and merchants will also receive money instantaneously. Sensibly, rival payment service networks — the National Payments Corporation of India, Visa, MasterCard and American Express — have come together to support Bharat QR. All banks must come on board to allow customers to use the QR code, given that more interoperability and lower merchant discount rates will drive digital payment adoption.The QR code is innovative and conceptually simple: a customer only needs a smartphone and an internet connection to use the code. But it also makes the payment system dependent on technology more than ever before, raising the pressure on cybersecurity. If somebody wants to sabotage the economy, all that he needs to do is to mess up the data on assets held in bank accounts. The dangers of a connected world became evident in India, for example, after last year's malware attack via a card-reading and money-dispensing and point-of-sale equipment that compromised over three million debit cards of at least five banks.Can malware capture debit or credit card details and replicate them as well? Are India's telecom networks susceptible to snooping? Do banks have foolproof systems and protocols to protect data, say, of accounts linked to Aadhaar? Banks must invest in acquiring the needed hardware and software, train staff to adhere to strict protocols and educate customers. The country must have a robust legal framework for privacy and data protection. That is not the case now.Everyone does not have a smartphone. Nor is spectrum plentifully available to make data networks ubiquitous. These problems will need to be addressed as well.

दैनिक भास्कर

Date: 22-02-17

दावा संस्कृति बचाने का, काम नष्ट करने का

वैलेंटाइन डे हाल ही में गुजरा है। आपने भी इसे मनाया होगा, जो इन दिनों भारत में जोखिमभरा काम है। हिंदुत्व वादी बरसों तक 14 फरवरी को हाथ में हाथ डाले घूमते युगलों पर हमले, वैलेंटाइन डे ग्रीटिंग कार्ड बेचने वालों की दुकान में तोड़-फोड़ और उस कैफे के बाहर नारेबाजी करते रहे, जिसमें युगल प्यार भरी गुफ्तगू में लगे हों। किंतु अब हिंदुत्व वालों ने अपने हथकंडों में बदलाव किया है। हिंदू महासभा ने घोषणा की थी कि वह अपने दस्ते भेजकर वैलेंटाइन डे मना रहे अविवाहित युगलों को मंदिर में विवाह कराने ले जाएगा (यदि साक्षी महाराज

की मर्जी चली तो उन्हें चार से 10 बच्चों को जन्म देने के गुणों पर लेक्चर दिया जाएगा ताकि अपनी कल्पनाओं के लिए बहुमत तैयार किया जा सकें)।

उनकी दलील है कि रूमानी प्यार का उत्सव होने के कारण यह अभारतीय है और यहीं वे पूरी तरह गलत हैं। इतिहासकार बताते हैं कि प्राचीन काल में प्रेम के देवता कामदेव की आराधना की सुस्थापित परम्परा रही है। मध्ययुग में मुस्लिम आक्रमण के बाद इसे त्याग दिया गया। किंतु हिंदू महासभा में किसी को भी हिंदू परम्परा की कोई वास्तविक समझ नहीं है। भारतीय मूल्यों का उनका विचार न सिर्फ आदिम और संकुचित मानसिकता का है बल्कि यह पूरी तरह इतिहास विरोधी भी है। सच तो यह है कि आज युवा जिसे पीडीए (पब्लिक डिस्प्ले ऑफ अफेक्शन) यानी प्रेम का जाहिर प्रदर्शन कहते हैं, वह प्राचीन भारत में व्यापक रूप से चलन में था। 11वीं सदी तक मुस्लिम जगत से आए यात्री भारत में यौन स्वतंत्रता देखकर स्तब्ध रह जाते थे और टिप्पणियां करते थे। आज वैलेंटाइन डे के युवा उत्सवी तो वास्तव में मुस्लिम संस्कृति आने के पूर्व की भारतीय संस्कृति का ही पालन कर रहे हैं, उससे थोड़े सौम्य रूप में जो उन दिनों मौजूद थी मसलन जैसी हम खजुराहो में देखते हैं।

कितनी बड़ी विडंबना है कि उन्हें भारतीय संस्कृति के स्वयंभू रक्षकों की नाराजी का सामना करना पड़ रहा है! इस 'स्वयंभू' वाले हिस्से में ही असली समस्या मौजूद है। यह सब भारतीय संस्कृति के नाम पर किया जा रहा है, जबकि यह विरोध हमारे असली भूतकाल को खारिज करने पर आधारित है। भारतीय संस्कृति हमेशा से बहुत उदार व व्यापक रही है, जिसने यूनानी से लेकर ब्रिटिश हमलों तक नए व विविध प्रभावों को अपने में समाहित किया है। मौजूदा भारतीय सभ्यता में मुख्य लड़ाई दो पक्षों में है। यदि अमेरिकी कवि वॉल्ट व्हिटमैन के शब्दों में कहें तो एक पक्ष उनका है जो यह स्वीकारते हैं कि हमारे अपने एेतिहासिक अनुभव के नतीजे में हमने बहुत व्यापक रूप ले लिया है और इसमें विविध प्रभाव मौजूद हैं। दूसरा पक्ष वह है, जिसने खुद ही 'सच्चे' भारतीय को अधिकाधिक संकुचित संदर्भों में परिभाषित करने का दायित्व ले लिया है। आधुनिक हिंदू धर्म ने विविधता को लेकर अपनी सहिष्णुता पर हमेशा गर्व किया है। वास्तव में अज्ञान के कारण कट्टरपंथी जिन स्वामी विवेकानंद पर दावा जताते हैं, वे तो सिर्फ असहिष्णुता ही नहीं, इस स्वीकार्यता को हमारी सभ्यता का मूल मानते थे कि ईश्वर तक पहुंचने के सारे रास्ते सही हैं यानी सर्व धर्म समभाव का हिंदू विचार। हिंदू महासभा और उसके जैसे गुट वैलेंटाइन डे के निर्मल आनंद को बिगाड़कर और शादी कराने के बहाने अपने नैतिकतावादी विचार थोपकर मूलत: हिंदू दर्शन को ही धोखा दे रहे हैं। सहिष्णुता का मूल सहिष्णु समाज वह स्वीकार कर लेता है, जो वह नहीं समझ पाता और यहां तक वह भी जो उसे पसंद न हो, जब तक कि उसे अनुच्छक पर थोपा न जाए।

वैलेंटाइन डे मनाने वाले युवाओं को परेशान करने वालों को यह कहने का कोई हक नहीं है कि वे ऐसा संस्कृति के लिए कर रहे हैं, जो लंबे समय से सहिष्णुता का ही पर्याय रही है। उनकी संकुचित मानसिकता और कट्टरता उसी संस्कृति को धोखा देती है, जिसे बचाने का वे दावा करते हैं। क्योंकि हिंदुत्व ब्रिगेड की 'भारतीय संस्कृति' की परिभाषा में खजुराहो के कामोत्तेजक शिल्पों को कहां जगह है? क्या इन शिल्पों को उसी प्रकार गिरा नहीं देना चाहिए जैसे भाजपा की पिछली सरकार के कार्यकाल में फैशन टीवी के केबल सिग्नल गिरा दिए गए थे? कामसूत्र, देवदासियों की परम्परा और कृष्ण लीला की कथाओं का क्या? क्या ये सब भी अब अभारतीय हो गए हैं?जब मैक्सिको के नोबेल पुरस्कार से सम्मान महान कवि दिवंगत ऑक्टोवियो पाज ने हमारी सभ्यता पर कविता 'इन लाइट अॉफ इंडिया' लिखी तो उन्होंने शृंगारिक काव्य पर पूरा अध्याय लिख डाला। इसमें उन्होंने अन्य चीजों के अलावा बौद्ध भिक्षु विद्याकर के 11वीं सदी के 1,728 काव्यों के संकलन को आधार बनाया, जिनमें से बहुत सारा काव्य शृंगार की खुली अभिव्यक्ति का है। क्या लदाहाचंद्र या भावकादेवी जैसे शृंगारिक कवि-कवयित्री भारतीय संस्कृति से बाहर कर दिए जाएंगे? क्या हमारी सांस्कृतिक उपलब्धियों की प्रशंसा करने वाले भावी ऑक्टोवियो पाज से हम यह कहेंगे कि टीवी पर महाभारत तो भारतीय संस्कृति है लेकिन, कृष्ण के प्रति गोपियों के आकर्षण का शास्त्रीय चित्रण भारतीय संस्कृति नहीं है?

ऐसा लग सकता है कि वैलेंटाइन डे के बारे में कुछ घटिया तत्व क्या सोचते हैं उसका ज्यादा महत्व नहीं है। किंतु यही घटिया मानसिकता हिंदू धर्म पर वेंडी डोनीगर के विद्वतापूर्ण अध्ययन को नष्ट करने का कारण बनी। यदि इन लोगों को असहिष्णुता व धमकाने की कार्रवाइयों के बाद भी बच निकलने दिया गया तो हम उन्हें ऐसी किसी चीज के खिलाफ हिंसा की अनुमति दे रहे होंगे, जो एक सभ्यता के रूप में हमारे अस्तित्व के लिए अनिवार्य है। बहुलतावादी और लोकतांत्रिक भारत को कई पहचानों की बहुलतावादी अभिव्यक्ति के प्रति सहिष्णुता दिखानी ही होगी। भारतीय संस्कृति के स्वयंभू झंडाबरदारों को उनका पाखंड व दोहरे मानदंड हम शेष लोगों पर लागू करने की इजाजत देना यानी उन्हें भारतीयता को इतना गिराकर परिभाषित करने देना होगा कि इसका अस्तित्व ही मिट जाएगा।

नई भाजपा सरकार को सरकारी योजनाओं को संस्कृत नाम देने का बड़ा शौक है तो उसे वैलेंटाइन डे को कामदेव दिवस का नाम देने पर विचार करना चाहिए। उसके बाद हिंदू महासभा को कुछ प्राचीन साहित्य देकर अपनी प्राचीन संस्कृति के वैभव की खोज करने को कहना चाहिए। संभव है इससे उसके कट्टरपंथी, संकुचित दिमाग कुछ विस्तार हासिल करे।

शशि थरूर, विदेश मामलों की संसदीय समिति के चेयरमैन और पूर्व केंद्रीय मंत्री (ये लेखक के अपने विचार हैं।)

Date: 22-02-17

सईद को 'बुरा' आतंकी मानने की पाकिस्तानी मजबूरी

कैसी विडंबना है कि भारत के सर्जिकल स्ट्राइक के बाद से पाकिस्तान ने कश्मीर में घुसपैठ व सुरक्षा बलों पर हमलों का जो सिलसिला चलाया है, उससे कहीं ज्यादा अनुपात में उसे अपने यहां आतंकी हमलों का सामना करना पड़ रहा है। मंगलवार को भी पाकिस्तान के खैबर पख्तूनख्वां में कोर्ट के बाहर हुए तीन विस्फोटों में कई लोग मारे गए। इसकी जिम्मेदारी तालिबान से अलग हुए गुट 'जमात-उल-अहरार' ने ली है। यह हाल में पाक में हुए आतंकी हमलों की कड़ी है, जिसमें 100 लोग मारे जा चुके हैं, जबकि सैकड़ों अन्य घायल हुए हैं।

पाकिस्तान की जो 'अच्छे' और 'बुरे' आतंकियों व गुटों की सूची है, जाहिर है अहरार उसमें बुरी सूची में शामिल हैं। लश्कर-ए-जांघवी, तहरीक-ए-तालिबान पाकिस्तान और कुछ अन्य गुट भी बुरों की इस जमानत में शामिल है। 'अच्छों' की जमात में हाफिज सईद, जैश-ए-मोहम्मद का मसूद अजहर, हिजबुल का सैयद सलाहुद्दीन, हक्कानी नेटवर्क और अफगान तालिबान है। साफ है कि ये वे गुट हैं, जिनका इस्तेमाल पाकिस्तान अफगानिस्तान व भारत के खिलाफ करता है। लेकिन हाल ही में पाकिस्तान को यह अहसास हुआ है कि हाफिज सईद दरअसल बुरी जमात का आतंकी है और खुद उसके लिए खतरा है। यह किसी और ने नहीं पाक रक्षामंत्री ख्वाजा आसिफ ने म्यूनिख में हुए अंतरराष्ट्रीय सुरक्षा सम्मेलन में स्वीकार किया। इसकी तीखी प्रतिक्रिया पाकिस्तान में हुई। बरसों तक आतंकियों को लेकर पाकिस्तानी जनमानस का ब्रेनवॉश करने का यह नतीजा है। पाकिस्तान के पूर्व राष्ट्रपति मुशर्रफ ने तो सईद को 'सोशल वर्कर' तक कहा था। यह सोशल वर्क उस देश को कहां ले आया है, यह तो स्पष्ट ही है। परंतु इस सामाजिक कार्यकर्ता की असलियत स्वीकारने की बुद्धि पाकिस्तान को भारत के दबाव में नहीं आई है। इसके पीछे है अमेरिकी राष्ट्रपति डोनाल्ड ट्रम्प का यह संकल्प है कि वे आतंकवाद को मिटाकर रहेंगे और उनके निशाने पर पाक आतंकी गुट भी हैं। अमेरिका की ओर से आतकंवाद से लड़ने के लिए मिलने वाली सहायता ही पाकिस्तान की रणनीति की धुरी है। यदि यह बंद हो जाए तो उसे अपनी करतूतों को अंजाम देने में मुश्किल पेश आने लगेगी। विडंबना यह है कि आतंकवाद से लड़ने के लिए मिलने वाली मदद का इस्तेमाल वह इसी के लिए करता रहा है। धीरे-धीरे अंतरराष्ट्रीय समुदाय को इस हकीकत का अहसास होने लगा है।

बिज़नेस स्टैंडर्ड

Date: 22-02-17

आधुनिक मशीनों के इस्तेमाल से किसान हो सकते हैं मालामाल

कम लागत में भी अधिक उत्पादन हासिल करने के लिए किसानों को उन्नत तकनीकी संसाधनों के इस्तेमाल का मंत्र अपनाना चाहिए। यह किसानों की आय बढ़ाने के साथ ही घरेलू और अंतरराष्ट्रीय बाजारों में उनकी उपज को भी प्रतिस्पद्र्धी स्तर तक ले जाने में मददगार बनता है। इसके लिए अधिक से अधिक कृषि कार्यों को मशीनीकृत किए जाने की जरूरत है क्योंकि मानवीय स्तर पर उतने बढिय़ा नतीजे नहीं मिल पाते हैं। साथ ही, खेती में इस्तेमाल होने वाले उपकरणों और मशीनों को अधिक कारगर और कुशल बनाने की भी जरूरत है। लेकिन दुर्भाग्य से भारतीय कृषि जगत में अभी ऐसा कुछ नहीं हो रहा है।दरअसल अधिकांश कृषि उपकरणों का निर्माण छोटे एवं कुटीर स्तर पर बनी इकाइयों में ही होता है जो तय मानकों का पालन करने और अच्छी गुणवत्ता वाली सामग्री का इस्तेमाल करने में ढिलाई बरतते हैं। इसके चलते ये कृषि उपकरण खराब डिजाइन और कमतर गुणवत्ता वाले होते हैं। मनचाही सटीकता से कृषि कार्यों को संपादित करने में ये उपकरण नाकाबिल साबित होते हैं। यहां तक कि पानी के पंप, जुताई वाले हल, हेंगा, बीज डालने वाली मशीन, कीटनाशकों का छिड़काव करने वाली मशीन और गहाई वाली मशीनों जैसे अपेक्षाकृत जटिल उपकरणों को भी बनाने में छोटी एवं मझोले स्तर की इकाइयां तय मानकों का ठीक से पालन नहीं करती हैं।

वैसे परिष्कृत तकनीक का इस्तेमाल करने वाली बड़ी औद्योगिक इकाइयां आम तौर पर बेहतर गुणवत्ता और क्षमता वाले कृषि उपकरण बनाने में सफल रहती हैं। लेकिन बड़ी इकाइयों में बने उपकरणों की कीमत छोटे स्तर पर बनी मशीनों की तुलना में अधिक होती है। लिहाजा, लोग उन्हें खरीदना कम पसंद करते हैं। असंगठित क्षेत्र के कृषि उपकरणों में गुणवत्ता को लेकर उतनी जागरूकता नहीं देखी जाती है। इसकी एक वजह तो यह है कि सरकारी सब्सिडी के लिए गुणवत्ता वाले उत्पादों की खरीद अनिवार्य नहीं है। कृषि में उन्नत मशीनों की अहमियत से बेखबर किसानों को इस वजह से फसल की कम उपज के रूप में कीमत चुकानी पड़ती है। इसके अलावा दोयम दर्जे के उपकरणों के चलते किसानों को बीज, खाद, कीटनाशक, पानी, बिजली और ईंधन के मदों में अधिक लागत लगानी पड़ती है।

अगर उन्नत मशीनों का इस्तेमाल किया जाए तो किसान न केवल अधिक उत्पादकता हासिल कर सकते हैं बल्कि अपना समय, लागत और मेहनत में भी बड़ी बचत कर सकते हैं। वैसे तो हरेक तरह के परिवेश में इनकी अपनी अहमियत है लेकिन बारिश पर आधारित खेती में इनका महत्त्व बढ़ जाता है। असल में बारिश पर निर्भर कृषि में सीमित संसाधनों का किफायती एवं उत्पादक इस्तेमाल ज्यादा जरूरी है। राष्ट्रीय कृषि विज्ञान अकादमी की तरफ से प्रकाशित एक नीतिगत पत्र में कहा गया है कि बेहतर एवं उन्नत कृषि उपकरणों के इस्तेमाल से 20 से लेकर 30 फीसदी समय और श्रम की बचत की जा सकती है। इससे उपज भी 10 से 15 फीसदी बढ़ जाती है। आधुनिक मशीनों के प्रयोग से फसलों की आवृत्ति भी पांच से 10 फीसदी तक बढ़ाई जा सकती है। इसी के साथ खाद-बीज और रसायन पर होने वाला खर्च भी 15 से 20 फीसदी तक कम किया जा सकता है।कृषि गतिविधियों में सिंचाई से जुड़ी मशीनों को उन्नत किया जाना सबसे ज्यादा जरूरी है। दरअसल सिंचाई के सही तरीके और संसाधनों के बारे में किसानों की जागरूकता का स्तर भी कम है। अधिकतर किसानों को यह अहसास ही नहीं होता है कि असमतल जमीन पर सिंचाई करने में समतल जमीन की तुलना में 20 से 25 फीसदी अधिक बिजली लगती है। असमतल खेत में सिंचाई करने से फसल भी बेतरतीब खड़ी होती है। इसका सबसे बुरा असर यह होता है कि खर-पतवार बढ़ जाती है जो उपज पर असर डालती है। इसके अलावा ऐसे खेतों में होने वाली पैदावार की गुणवत्ता भी कमतर होती है।कुटीर उद्योगों और छोटी इकाइयों में बनाए जाने वाले वाटर पंप का प्रदर्शन काफी

खराब रहता है। अकादमी के इस शोधपत्र में कहा गया है कि आम तौर पर बिकने वाले वाटर पंप की क्षमता केवल 45 फीसदी ही होती है जबकि कम-से-कम 60 फीसदी की उम्मीद की जाती है। ये पंप सामान्य से अधिक बिजली खपत करते हैं लेकिन कृषि कार्यों में इस्तेमाल होने वाली बिजली पर मिलने वाली भारी सब्सिडी के चलते वे इस पर शायद ही ध्यान देते हैं। लेकिन बिजली के फालतू खर्च को रोकने के लिए हर हाल में कदम उठाने होंगे। कृषि में इस्तेमाल होने वाले वाटर पंप की क्षमता को बेहतर उत्पादन तकनीकों और कुछ कृषि-विज्ञान तकनीकों के माध्यम से सुधारा जा सकता है। इससे बिजली की बचत करने के साथ ही पानी का भी फालतू खर्च रोका जा सकेगा।

खेत को समतल करने के लिए किसानों को लेजर किरणों से लैस भूमि समतलीकरण मशीन का इस्तेमाल करना होगा। इसके अलावा धान, गेहूं, मक्का, मूंगफली और गन्ना फसलों को समतल जमीन की तुलना में थोड़ी उथली जमीन पर उगाने को प्राथमिकता दी जानी चाहिए। पानी के अपव्यय को रोकने वाले ऐसे कदमों से फसल की उपज में भी बढ़ोतरी होगी। पूरी सटीकता से पानी का छिड़काव करने वाले तरीकों से सिंचाई करने पर न केवल खर्च में कमी आएगी बल्कि फसल उत्पादकता भी बेहतर होगी। कृषि में कीटनाशकों का छिड़काव करने वाली मशीनों को भी उन्नत बनाकर खर्चों को कम किया जा सकता है। इन मशीनों में ऐसी व्यवस्था होनी चाहिए कि खेत के आकार-प्रकार के आधार पर छिड़काव की मात्रा को समायोजित किया जा सके। लेकिन दुर्भाग्य की बात है कि न तो किसान और न ही इन मशीनों की निर्माता कंपनियां इतने अहम मसले को लेकर संवेदनशीलता दिखा रही हैं।

THE HINDU

Date: 21-02-17

Two-state solution is dead

There are two alternatives. Israel wants one, but it is time for international actors to push for the other

U.S. President Donald Trump's refusal to endorse the two-state solution for the Israeli-Palestinian conflict has understandably triggered sharp responses. At least since the 1993 Oslo Accords, giving statehood to the Palestinians has been the bedrock of any proposal to solve the oldest conflict in modern West Asia. It's the internationally acknowledged solution. But Mr. Trump's refusal to endorse the idea did not come out of the blue. For decades, the U.S. has played a partisan role in the Israeli-Palestinian conflict. After the failed 2000 Camp David summit, hosted by President Bill Clinton, Washington never made any meaningful attempt to push the Israelis to accept the two-state proposal. The 2007 Annapolis conference hosted by President George W. Bush was not more than a photo opportunity. Under President Barack Obama, State Secretary John Kerry launched a peace bid which collapsed at an early stage. Over the years, particularly after Oslo, Israel steadily expanded the settlements in the West Bank, killing the two-state solution. The settler population in the West Bank, excluding East Jerusalem which Israel has annexed, has increased by about 2,70,000 since the Oslo pacts. During the Obama presidency alone,

more than 1,00,000 settlers moved to the West Bank. Now, the number of Israeli settlers in the West Bank and East Jerusalem is more than 7,00,000.

The promise of statehood

Land grabbing has been a fundamental element of Israel's approach towards the Palestinians. Israel has the monopoly to use force, both against Palestinian civilians and militants. During the Obama years alone, Israel bombed Gaza three times, killing thousands. In these circumstances, how would a Palestinian state come up? Or if the state of Israel was committed to Palestinian statehood, why did it allow more of its citizens to move to territories that should be part of any future Palestinian state, and build settlements? More worryingly, Israel never came under significant international pressure to revert this aggressive settlement policy. For the average Palestinians, statehood remained elusive. International conferences were held in their name and statements were made by their leaders about a "peaceful two-state solution", but in reality the occupation only deepened. This is because Israel on paper remains committed to two states, but has always preferred a no-state solution.

If the two-state solution is dead, what is the alternative? One is to retain the status quo: a militarised Jewish state permanently occupying the Palestinian territories and even annexing parts of it, without giving full citizenship rights to the Palestinians. The other is to have a single democratic federal state with equal rights to Jews, Muslims, Christians and others. It's clear that Israel wants the former. But it's perhaps time for international actors who care about the plight of the Palestinians to start pushing for the latter.

Live हिन्दुस्तान.com

Date: 21-02-17

गोपनीयता के खतरे

केंद्रीय सूचना आयुक्त ने कहा है कि महात्मा गांधी के हत्यारे नाथूराम गोडसे ने अदालत में जो बयान दिया था, उसे सार्वजनिक किया जाए। सूचना के अधिकार के तहत इसकी जानकारी राष्ट्रीय अभिलेखागार से मांगी गई थी। अभिलेखागार ने जवाब में कहा कि वह ऐसी जानकारी अलग से नहीं दे सकता, जिसे यह जानकारी चाहिए, वह खुद अभिलेखागार में आकर इसे ढूंढ़ सकता है।जानकारी मांगने वाले ने जब इसके लिए सूचना आयोग से संपर्क किया, तो आयोग ने अभिलेखागार से यह जानकारी उपलब्ध कराने को कहा। केंद्रीय सूचना आयुक्त श्रीधर आचार्युलू ने कहा है कि लोगों को यह जानने का अधिकार है कि महात्मा गांधी के हत्यारे ने अपनी सफाई में अदालत में क्या कहा था? साथ ही, उन्होंने यह भी कहा कि नाथूराम गोडसे या उनकी विचारधारा के लोग महात्मा गांधी के दर्शन से असहमत हो सकते थे, लेकिन इसका यह अर्थ नहीं है कि वे गांधी की हत्या करने की हद तक चले जाएं। राष्ट्रीय अभिलेखागार से यह भी कहा गया है कि वह इस संबंध में एक इंडेक्स तैयार करे और उसे अपनी वेबसाइट पर भी डाले, ताकि लोग जान सकें कि हत्या करने वाले ने अदालत में क्या कहा?

सूचना आयुक्त का यह आदेश तब आया है, जब इन दिनों सोशल मीडिया, खासकर फेसबुक और वाट्सएप पर नाथूराम गोडसे का एक 'कबूलनामा' जगह-जगह चलाया जा रहा है। यह 'कबूलनामा' बताता है कि महात्मा गांधी का हत्यारा उनका अनन्य भक्त था, लेकिन वैचारिक कारणों से वह गांधी की हत्या करने को 'बाध्य' हुआ। जाहिर है कि इस कथित 'कबूलनामे' की भाषा नाथूराम गोडसे के महिमा मंडन की है।यह मामला बताता है कि जब हम इस या उस कारण से सच को सामने आने से रोकते हैं, तो कैसे झूठ उसका विकल्प बनकर ज्यादा बड़ा नुकसान पहुंचाता है। महात्मा गांधी की हत्या पूरी दुनिया को हिला देने वाली घटना थी और अब तक बीसियों किताबें लिखी जा चुकी हैं। बहुत सी किताबें ऐसे लोगों ने भी लिखी हैं, जिन्हें हम गांधी समर्थक कहते हैं। कई किताबें विदेशी लेखकों और पत्रकारों ने लिखी हैं, तो कुछ ऐसी किताबें

भी हैं, जिनके लेखक नाथूराम गोडसे की विचारधारा के समर्थक हैं। पिछले दिनों नाथूराम गोडसे पर बना एक आत्मकथ्य नुमा नाटक भी काफी चर्चित हुआ था। दिलचस्प बात यह है कि गोडसे का जो कथित 'कबूलनामा' इन दिनों सोशल मीडिया पर चल रहा है, वह इनमें से किसी भी किताब में नहीं है। यह ठीक है कि सोशल मीडिया पर इस तरह के झूठ बहुत तेजी से चलते हैं, लेकिन जब सच कहीं उपलब्ध ही न हो, तो वे झूठ जंगल की आग की तरह फैलते हैं। सोशल मीडिया पर पर ऐसे ही कई झूठ सुभाष चंद्र बोस के बारे में भी चलते रहते हैं। अच्छी बात यह है कि सरकार अब बोस से जुड़ी गोपनीय फाइलों को धीरे-धीरे सामने ला रही है।पर न जाने कितने और ऐसे मामले हैं, जिनकी फाइलें अब भी गोपनीय हैं। यह जरूरी है कि देश के पास गोपनीयता की खुलासे की एक नीति हो। एक समय-सीमा तय हो, जिसके बाद तमाम गोपनीय फाइलें सार्वजनिक कर दी जाएं। यह संभव नहीं कि हर मामले पर केंद्रीय सूचना आयोग कोई आदेश दे। सरकार पर निर्भरता का अर्थ यह भी हो सकता है कि कुछ चुनींदा किस्म के सच ही सामने आएं, बाकी और गहरे गाड़ दिए जाएं। इसलिए नीति ऐसी होनी चाहिए कि किसी दल विशेष के लिए उसके दुरुपयोग की आशंका ही न रहे। इंटरनेट और सोशल मीडिया के इस युग में यह ज्यादा ही जरूरी है। ये ऐसे माध्यम हैं, जिनके जरिये जनमत को प्रभावित करने के लिए झूठ का बड़े पैमाने पर प्रसारण किया जाता है।